सबसे प्यारा शब्द है – माँ

माँ शब्दकोश का ही नहीं अपितु जीवन के वाड्मय का भी सबसे प्यारा शब्द है। शिशु के मुख से सबसे पहले यही एकाक्षरी शब्द फूटता है। यद्यपि माँ के अतिरिक्त माता, माई, अम्मा, जननी, मैया आदि कितने ही शब्द इस अर्थ में प्राप्त होते हैं, किंतु माँ शब्द में जो महिमा है वह अन्यत्र नहीं मिलती। तथापि व्यवहार में माता शब्द सबसे अधिक प्रचलित है।

भारतीय वाड्मय में माता का अभिप्राय और स्वरूप अत्यंत विशद है । शब्दकोशों के अनुसार माता स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द है। यह ऐसा संबोधन सूचक पद है जिसमें आदर और श्रद्धा का भाव स्वतः समाहित है। नारियों के लिए संबोधन सूचक अन्य शब्दों में वह गरिमा नहीं मिलती जो माता शब्द में है। इसीलिए भारतीय मन परनारियों को माता कहकर संबोधित करता है। यह भारतीय संस्कृत का रेखांकनीय वैशिष्टय है। आज भले ही हम पाश्चात्य अनुकरण पर अंग्रेजी भाषा के प्रभाव के कारण 'लेडीज एंड जेंटिलमैन' के अनुवाद के रूप में 'देवियों और सज्जनों' कहकर स्वयं को अभिजात्य एवं सभ्य समझने का दंभ करें किंतु उसमें वह सांस्कृतिक अस्मिता कहीं नहीं झलकती जिसका दर्शन माता संबोधन में सुलभ है। वस्तुतः यह पूरब और पश्चिम का सांस्कृतिक भेद है।

पश्चिम की सभ्यता पूर्व की संस्कृति से यहाँ बहुत पीछे छूट जाती है। पश्चिम में अपनी जननी माँ है। उसके लिए 'मदर' संबोधन है किंतु अन्य नारियाँ 'मदर' नहीं हैं। वे लेडीज हैं। भारतीय-दृष्टि इस संदर्भ में नितांत भिन्न है। वह अन्य नारियों को नारी न कहकर मातृवत मानती है। उन्हें माता कहती है। उसका आदर भाव अन्य नारियों के प्रति भी वही है, जो अपनी माता के प्रति है। इसीलिए उसमें निभ्रान्त संदेश है-

[illegible] ।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः ।।

अर्थात जिसकी दृष्टि में पराई नारियाँ माता के समान हैं, पराया धन मिट्टी के ढेले के समान है और सभी प्राणी अपने ही समान हैं, वही ज्ञानी है। ज्ञान की यह दृष्टि जब प्रसार पाती है तो अपराध थम जाता है। पराई स्त्री में माता का दर्शन करने वाले पौराणिक पात्र अर्जुन और ऐतिहासिक नायक शिवाजी के समान उच्च आदर्श उपस्थित करते हैं। 'लेडीज' शब्द आदर सूचक अवश्य है, किंतु उसमें माता शब्द जैसी श्रद्धापूर्ण पवित्रता नहीं है। कारण यह है कि 'लेडी' भोग्या हो सकती है, उसके प्रति रतिभाव जागृत हो सकता है किंतु माता के प्रति ऐसी संभावना नगण्य है। रतिभाव की अस्वस्थ जागृति व्यभिचार की दुष्ट प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करती है और कभी-कभी तो बलात्कार जैसे जघन्य अपराध तक पतित कर देती है। अबोध बालिकाएँ तक उस से नहीं बच पातीं। निठारी हत्याकांड जैसे आपराधिक प्रकरण इस दुखद तथ्य के साक्षी हैं। भारतीय-समाज की ये पतनोन्मुखी स्थितियाँ अपनी संस्कृति से दूर हटने और पराई सभ्यता के छद्म जाल में उलझने का दुष्परिणाम हैं। मनुष्य के मन में परनारियों के प्रति मातृभाव की पुष्टि ही ऐसी अनिष्टकारी स्थितियों को नियंत्रित कर सकती है। किसी बाह्य उपाय

अथवा दंडविधान मात्र से ऐसी दुर्घटनाएं रोक पाना अत्यंत दुष्कर कार्य है। अत: यह अत्यंत आवश्यक है कि हम अपने सांस्कृतिक अस्मिता की मेरुदंड मातृशक्ति के स्वरूप, महत्व एवं गौरव की पुनर्प्रतिष्ठा करें।

ज्ञानानुभवों से उत्पन्न चिंतन की सर्वाधिक प्रभाव पूर्ण लिखित प्रस्तुति वाड्मय कही जाती है। साहित्य वाड्मय के अपार विस्तार का सबसे अधिक मनोरम रूप है। उसने सदा से समाज को ज्ञान की अन्य प्रस्तुतियों की अपेक्षा अधिक प्रभावित किया है। अत: विश्व की सभी विकसित भाषाओं में निरंतर साहित्य सृष्टि होती रही है और उस साहित्य में महत्वपूर्ण विषयों को निरंतर प्रस्तुत किया जाता रहा है ताकि मानव समुदाय उनके महत्व को विस्मृत ना कर पाए और उन पर दृष्टि केंद्रित रख सके। माता के संदर्भ में रचित विश्व साहित्य भी इस तथ्य का साक्षी है। जहां भारतीय साहित्य में संस्कृत से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं तक माँ के संदर्भ में विपुल सामग्री मिलती है वहां अंग्रेजी, रूसी, जापानी आदि विदेशी भाषाओं के साहित्य में भी माँ को श्रद्धा और आदर के साथ स्मरण किया जाता रहा है। मैक्सिम गोर्की का उपन्यास 'माँ' इस तथ्य की पुष्टि करता है। अंग्रेजी कवि कॉलरिज की कविता 'दि थ्री ग्रेब्स' में माँ की महिमा का बखान है। यहाँ तक कि विभाषाओं और बोलियों में भी माँ का स्वरूप, उसका वात्सल्य, उसकी ममता एवं सेवा भावना, उसका त्याग और निश्छल निस्वार्थ प्रेम वर्णित है। लोककथाएँ, लोरियाँ और लोकगीत माँ के वात्सल्यपूर्ण ममत्व के विस्तृत धरातल पर ममतामय रूपों में अंकित हंै किन्तु भारतीय भाषाओं में उसका वर्णन जितना विशद और गौरवास्पद है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। इसीलिए मातृरूप वर्णन में भारतीय साहित्य विशिष्ट है।

विश्व-साहित्य में माता की प्रतिष्ठा का कारण माता की उत्कृष्ट रचनात्मक सामथ्र्य है । इस सामथ्र्य के बल पर माता अपने परिवार, समाज और राष्ट्र को दूर तक प्रभावित करती है। वह प्रभावी भूमिका में होने पर भी प्रभावित करती है और अप्रभावी होने पर भी अपना प्रचुर प्रभाव डालती है। माता की प्रभावी भूमिका सुपरिणामवती और मधुमती होती है क्योंकि इस स्थिति में वह उत्कृष्ट सृष्टि करती है। अप्रभावी भूमिका में उसकी रचनाशक्ति का सदुपयोग नहीं हो पाता है और तब वह परिवार, समाज और राष्ट्र को श्रेयस्कर उपलब्धियां प्रदान करने में असफल रह जाती है।

मनुष्य समाज की लघुतम इकाई है। मनुष्य को मनुष्यता माता सिखाती है। वही शिशु का संरक्षण. पोषण करती हुई उसे श्रेष्ठ नागरिक बनाती है। श्रेष्ठ नागरिकों से अच्छे समाज और सशक्त राष्ट्र का निर्माण होता है। इसके विपरीत अप्रभावी भूमिका में माता उपयुक्त दायित्व के निर्वाह में असफल रहती है और तब मनुष्य में मानवीय सद्गुणों का सम्यक विकास बाधित होता है ; सुसंस्कृत-समाज और सशक्त-राष्ट्र के निर्माण की संभावनाएं क्षीण हो जाती हैं। अत: समाज-निर्माण में माता की महती भूमिका स्वत: सिद्ध है।

माता का स्नेह निस्वार्थ होता है। वस्तुत: निस्सीम वात्सल्य की मृदुल सामथ्र्य ही मातृत्व है। मातृत्व संतान के लिए सर्वस्व न्योछावर करने को प्रस्तुत रहता है। प्राकृतिक दृष्टि से यह भाव इतना प्रबल है कि न केवल विद्या-बुद्धि संपन्न नारी जाति में व्याप्त है, अपितु जीव मात्र में तथैव संव्याप्त है। जिस प्रकार माँ द्वार पर खड़ी होकर स्कूल से लौटते बच्चे की बाट देखती है उसी प्रकार संध्या बेला में घर लौटती गौ भी अपने बछड़े से मिलने के लिए आतुर होती है। अपने बछड़े से मिलने को आतुर पूँछ

उठाकर दौड़ती हुई गौ की आतुरता में मातृत्व भाव की व्याप्ति सहज ही देखी जा सकती है। नीड़स्थ शावकों के लिए चोंच में दाना लाती चिड़िया का भावपूर्ण वात्सल्य शिशु को प्रेम पूर्वक भोजन कराती माता के वात्सल्य भाव से भिन्न नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि मातृत्व-भाव केवल मनुष्य की ही नहीं अपितु जीव मात्र की निधि है। वही सृष्टि क्रम का संचालक है। अतः माता प्रत्येक रूप में वंदनीय है। उसके नारीएतर अन्य जीव-रूप भी सर्वथा आदरास्पद हैं।

डॉ. कृष्णगोपाल मिश्र
विभागाध्यक्ष-हिन्दी
शासकीय नर्मदा स्नातकोत्तर महाविद्यालय
होशंगाबाद म.प्र.
Mob – 9893189646